# राष्ट्रभाषा हिन्दी

अभिषेक शर्मा, बी.टेक-प्रथम वर्ष
क्वान्टम, रूड़की

राष्ट्रीय जलविज्ञान संस्थान, रुड़की

प्रत्येक स्वतंत्र राष्ट्र की अपनी एक भाषा हुआ करती है। स्वतंत्र राष्ट्रों की पहचान का माध्यम उसकी अपनी भाषा का होना माना जाता है। राष्ट्रों की विचारधारा, भावों की सम्पत्ति, रीति-नीतियाँ और संस्कृति आदि हर चीज उसकी अपनी भाषा में सुरक्षित रहा करती है। जिस राष्ट्र की अपनी कोई भाषा नहीं होती, उसका साहित्य भी नहीं हुआ करता। संस्कृति भी सुरक्षित नहीं रह पाती। ऐसे राष्ट्र को सबसे बड़ा दरिद्र और हीन माना जाता है। न तो उसकी अपनी परंपराए बन सकती हैं, न रह ही पाती हैं। धीरे-धीरे इतिहास के पन्नों से भी उस राष्ट्र का नाम मिट जाया करता है। तात्पर्य यह है कि राष्ट्रों के स्वतंत्र निर्माण, विकास और सुरक्षा में उसकी राष्ट्रभाषा का बहुत अधिक योगदान रहा करता है। इससे राष्ट्रभाषा का महत्व स्पष्ट हो जाता है।

स्वाभाविक प्रश्न उठता है कि जिसे राष्ट्रभाषा कहा जाता है, उसकी कौन सी विशेषताएं होती हैं, उसमें कौन-कौन से गुण रहने चाहिए ? प्रायः सभी समझदार आदमी मानते हैं कि सर्वव्यापकता राष्ट्रभाषा का पहला मुख्य गुण और विशेषता है। अर्थात वही राष्ट्रभाषा हो सकती है जिसका विस्तार और प्रभाव-क्षेत्र व्यापक हो। जो देश के सभी लोगो में कम से कम समझी तो जाती हो, यदि बोली भी जाती हो, तब तो और अच्छी बात है। इसके बाद जिस भाषा को देश के अधिक से अधिक लोग पढ़ और लिख सकते हों, वह राष्ट्रभाषा हो सकती है। मुख्य रूप से या प्राथमिक और ऊपरी रूप से राष्ट्रभाषा के यही गुण और विशेषताएं मानी गयी हैं। इसके अतिरिक्त यह भी माना जाता है कि उस भाषा में सबसे अधिक साहित्य रचा होना चाहिए। साहित्य भी ऐसा कि जो पूरे देश की सभ्यता संस्कृति, रीति नीतियों, अच्छी परंपराओ, भावों और विचारों का प्रतिनिधित्व करने वाला हो। देश-जाति का धर्म, गौरव और महत्व का गान भी उसी भाषा के साहित्य में होना चाहिए। बनावट की दृष्टि से भाषा का स्वरूप सरल और वैज्ञानिक हो, अपने आप में पूर्ण हो। सब प्रकार के भावों और विचारों को प्रकट करने में समर्थ हो। उसे उच्चारण के अनुसार ही पढ़ा और लिखा जा सके। कुल मिलाकर इन सब प्रकार के बाहरी-भीतरी गुणों और विशेषताओं से युक्त सम्पन्न भाषा ही राष्ट्रभाषा हो सकती है। इस प्रकार के गुणों वाली भषाएं संसार में बहुत कम हैं।

इन सारी बातों को ध्यान में रखकर ही किसी देश की राष्ट्रभाषा कहा जाता है। जब हम इन गुणों और विशेषताओं को ध्यान में रखकर विचार करते हैं, तो पाते है कि संस्कृत के बाद जन्मी भाषाओं का काल समाप्त होने के बाद, मध्यकाल में आकर जिस भाषा को अधिक महत्व मिल सका वह हिन्दी ही है। उस काल में भी इस भाषा को पूर्व से पश्चिम तक, उत्तर से दक्षिण तक सभी जगह समान रूप से समझा जाता रहा है। सबसे अधिक साहित्य, वह भी जातीय गौरव से भरा हुआ साहित्य इसी भाषा में रचा जाता रहा है। इतना ही नही, ब्रिटिश शासन काल में जब देश स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए सघर्ष कर रहा था, तभी राष्ट्रपिता गाँधी के प्रयत्नों से सारे देश ने हिन्दी को राष्ट्रभाषा मान कर प्रचार-प्रसार करना शुरू कर दिया। स्वतंत्र राष्ट्रों की पहचान का माध्यम उसकी अपनी भाषा का होना माना जाता है। राष्ट्रों की विचारधारा, भावों की सम्पत्ति, रीति-नीतियाँ और संस्कृति आदि हर चीज उसकी अपनी भाषा में सुरक्षित रहा करती है। जिस राष्ट्र की अपनी कोई भाषा नहीं होती, उसका साहित्य भी नहीं हुआ करता। संस्कृति भी सुरक्षित नहीं रह पाती। ऐसे

राष्ट्र को सबसे बड़ा दरिद्र और हीन माना जाता है। न तो उसकी अपनी परंपराए बन सकती हैं, न रह ही पाती हैं। धीरे-धीरे इतिहास के पन्नों से भी उस राष्ट्र का नाम मिट जाया करता है। तात्पर्य यह है कि राष्ट्रों के स्वतंत्र निर्माण, विकास और सुरक्षा में उसकी राष्ट्रभाषा का बहुत अधिक योगदान रहा करता है। इससे राष्ट्रभाषा का महत्व स्पष्ट हो जाता है।

स्वाभाविक प्रश्न उठता है कि जिसे राष्ट्रभाषा कहा जाता है, उसकी कौन सी विशेषताएं होती हैं, उसमें कौन-कौन से गुण रहने चाहिए ? प्रायः सभी समझदार आदमी मानते हैं कि सर्वव्यापकता राष्ट्रभाषा का पहला मुख्य गुण और विशेषता है। अर्थात वही राष्ट्रभाषा हो सकती है जिसका विस्तार और प्रभाव-क्षेत्र व्यापक हो। जो देश के सभी लोगो में कम से कम समझी तो जाती हो, यदि बोली भी जाती हो, तब तो और अच्छी बात है। इसके बाद जिस भाषा को देश के अधिक से अधिक लोग पढ़ और लिख सकते हों, वह राष्ट्रभाषा हो सकती है। मुख्य रूप से या प्राथमिक और ऊपरी रूप से राष्ट्रभाषा के यही गुण और विशेषताएं मानी गयी हैं। इसके अतिरिक्त यह भी माना जाता है कि उस भाषा में सबसे अधिक साहित्य रचा होना चाहिए। साहित्य भी ऐसा कि जो पूरे देश की सभ्यता संस्कृति, रीति नीतियों, अच्छी परंपराओ, भावों और विचारों का प्रतिनिधित्व करने वाला हो। देश-जाति का धर्म, गौरव और महत्व का गान भी उसी भाषा के साहित्य में होना चाहिए। बनावट की दृष्टि से भाषा का स्वरूप सरल और वैज्ञानिक हो, अपने आप में पूर्ण हो। सब प्रकार के भावों और विचारों को प्रकट करने में समर्थ हो। उसे उच्चारण के अनुसार ही पढ़ा और लिखा जा सके। कुल मिलाकर इन सब प्रकार के बाहरी-भीतरी गुणों और विशेषताओं से युक्त सम्पन्न भाषा ही राष्ट्रभाषा हो सकती है। इस प्रकार के गुणों वाली भषाएं संसार में बहुत कम हैं।

इन सारी बातों को ध्यान में रखकर ही किसी देश की राष्ट्रभाषा कहा जाता है। जब हम इन गुणों और विशेषताओं को ध्यान में रखकर विचार करते हैं, तो पाते है कि संस्कृत के बाद जन्मी भाषाओं का काल समाप्त होने के बाद, मध्यकाल में आकर जिस भाषा को अधिक महत्व मिल सका वह हिन्दी ही है। उस काल में भी इस भाषा को पूर्व से पश्चिम तक, उत्तर से दक्षिण तक सभी जगह समान रूप से समझा जाता रहा है। सबसे अधिक साहित्य, वह भी जातीय गौरव से भरा हुआ साहित्य इसी भाषा में रचा जाता रहा है। इतना ही नही, ब्रिटिश शासन काल में जब देश स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए सघर्ष कर रहा था, तभी राष्ट्रपिता गाँधी के प्रयत्नों से सारे देश ने हिन्दी को राष्ट्रभाषा मान कर प्रचार-प्रसार करना भी आरंभ कर दिया था। आज मद्रास, बंगाल आदि जिन प्रदेशों में हिन्दी भाषा का राष्ट्रभाषा के रूप में ही विरोध किया जाता है, तब इन्हीं प्रान्तों के भाषा- वैज्ञानिकों और राजनेताओं ने हिन्दी को राष्ट्रभाषा तो माना ही,इसका प्रचार-प्रसार भी किया। इस प्रकार स्वतंत्र भारत में संविधान बनने और उसके लागू होने से पहले ही हिन्दी भाषा को राष्ट्रभाषा मान लिया गया था-क्यो? इस लिए कि ऊपर जो गुण और विशेषताएँ बतायी गयी हैं, बुनियादी रूप से वे सब इस भाषा में विद्यान है।

सन् 1947 में जब देश स्वतंत्र हुआ उसके बाद सन् 1950 में देश का अपना संविधान बनकर लागू हुआ, तब देश की राज्य और राष्ट्रभाषा हिन्दी को ही घोषित किया गया लेकिन साथ में एक शर्त लगा दी गयी। वह यह कि अगले 15 वर्षों अर्थात सन् 1965 तक अंग्रेजी ही राष्ट्र और राज्यभाषा बनी रहेगी। इन पंद्रह सालों में सभी प्रांतों की सहमति से हिन्दी को राष्ट्रभाषा के पद पर बैठाने की तैयारी कर ली जायेगी। कितनी विडंबना, मजाक, बल्कि मूर्खता की बात है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के प्रद्रंह वर्षो के बाद हिन्दी को उसका उचित पद देना था। इस मूर्खतापूर्ण कार्य का परिणाम यह निकला कि राजनीतिक स्वार्थों के कारण

कल के हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने के हिमायती आज उसके विरोधी बन गए। जिस कारण पंद्रह वर्ष तो क्या, 44-45 वर्ष बीत जाने के बाद भी हिन्दी संविधान के अनुसार और व्यवहार के स्तर पर बस कहने को ही राष्ट्रभाषा है,वास्तव में वह दासी भी नहीं। खेद तो तब होता है कि हिंदी के नाम पर या उसका व्यवहार कर करोड़ों की कमाई करने वाले भी आम व्यवहार में उसका प्रयोग करना सामाजिक हीनता और अपमान समझते हैं। हिन्दी सिनेमा से जुड़े अधिकतर लोग इस गुलाम मानसिकता के स्पष्ट प्रमाण और उदाहरण हैं।

संविधान की दृष्टि से हिन्दी राष्ट्रभाषा होते हुए भी वास्तविक अर्थों या व्यवहार में राष्ट्रभाषा क्यों नही बन पायी, इसका पहला दोष तो स्वर्गीय पं. नेहरू की उस नीति पर जाता है, जिसने संविधान में 15 वर्षो का समय जुड़वा दिया, दूसरे दोषी हम हिन्दीभाषी स्वयं हैं। हम हिन्दी का नाम लेते हैं, उसके नाम पर कमाई करते हैं, गुलछर्रे भी उड़ाते हैं, पर व्यवहार के नाम पर अंग्रेजी भाषा और अंग्रेजी दोनों की चमचागिरी करने लगते हैं। अर्थात न तो स्वंय व्यवहार में लाते हैं, न औरो पर व्यवहार में लाने का दवाब ही डालते हैं। कथनी और करनी के इस गहरे भेद के कारण ही राष्ट्रभाषा हिन्दी आज अपने घर में ही परदेसी या विदेशी बनकर बस, जिये जा रही है। वास्तव में स्वतंत्र भारत के हम सब स्वतंत्र नागरिकों के लिए यह शर्म की बात है, कई विदेशी राजनेता तक इसके लिए हमें धिक्कार चुके हैं।

***